लोकोत्सवता

सुअटा या नौरता

सुअटा या नौरता कुमारी कन्याओं द्वारा खेला जाने वाला एक अनुष्ठानपरक खेल है, जोकि आश्विन-शुक्ल प्रतिपदा से नौ दिन तक चलता रहता है।इ स आख्यानक खेल का सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र 'सुअटा' है, इसीलिए उसका नाम 'सुअटा' पड़ा है। नवरात्रि में खेले जाने के कारण और शक्ति से जुड़े होने से उसे 'नौरता' कहा गया है। पहले आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को स्कंदमह नामक उत्सव मनाया जाता था, जिसमें स्कंद की पूजा होती थी, फिर क्वाँरी कन्याओं द्वारा गौरी की पूजा होने लगी और दोनों उत्सवों को मिलाकर एक कर दिया गया, जिसे कोई सुअटा और कोई नौरता कहने लगे। सुअटा की पहचान विस्मृति के गर्भ में चले जाने से अबइ स खेल की कथा में कई प्रश्नचिन्ह लग गये हैं और विद्वान् व्याख्याकारों ने लोक की चिंता न करते हुए जो प्रच्छन्न निष्कर्ष निकाले हैं, उनसे विवादों के दायरे बन गये हैं। वस्तुतः किसी भी लोकोत्सव या लोकखेल की व्याख्या लोकदृष्टि से ही होना उचित है।

लोकप्रचलित कथा

इस खेल के प्रमुख आधार के रूप में समस्त बुंदेलखंड जिस कथा को महत्त्व देता है, वह एक दानव, राक्षस या भूत से संबंधित है। सुअटा दैत्य-दानव या भूत था, जो कुमारी कन्याओं को सताता था। एक वर्णना के अनुसार वह उनको पकड़कर खा जाता था, जबकि दूसरी वर्णना के अनुसार वह कन्याओं से छेड़छाड़ करता था और तीसरी जनश्रुति में उनका अप्रहरण कर उन्हें संकट में डालता था। इन कारणों से कन्याओं को उसकी पूजा करने को विवश होना पड़ा । साथ ही उससे रक्षा के लिए उन्हें माँ गौरी से प्रार्थना करनी पड़ी। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर माता ने उस दानव या राक्षस का विनाश कर डाला। इस अंचल के कुछ भूभागों में देवी पार्वती द्वारा राक्षस के संहार का उल्लेख नहीं है, पर वहाँ कुछ क्रिया-व्यापारों के माध्यम से इसका संकेत मिलता है। उदाहरण के लिए, दानव या भूत की मिट्टी की मूर्ति को मिटा देना या उसके अंग-भंग करना, गली में बने उसके चित्र को मिटाना, उसे अपमानित करना, उसकी 'मरग' (अंत्येष्टि भोज) करना आदि।

कथा का एक रूप यह है कि 'सुअटा' और 'मामुलिया' सगे भाई-बहिन थे। मामुलिया ने अपने भाई की अपहरण करने की आदत खत्म करने के लिए अपना बलिदान कर दिया था और अंतिम क्षणों में अपहरण न करने का वचन लिया था। सुअटा ने अपनी तरफ से यह शर्त रखी थी कि यदि कन्याएँ उसकी मूर्ति बनाकर नौ दिन तक पूजा करेंगी, तो वह उन्हें कभी परेशान नहीं करेगा। इसीलिए कुमारी कन्याएँ नवरात्रि में उसकी पूजा करती हैं।

दतिया-वर्णना में एक विशेष तथ्य यह है कि आश्विन-पूर्णिमा को 'सुअटा' की गर्दन 'पड़ा' द्वारा काट दी जाती है। कन्याएँ ढिरिया लेकर माँगी हुई वस्तुओं या धनराशि से सामूहिक भोज करती हैं, जिसे अंत्येष्टि-भोज भी कहते हैं।

कथा का विवेचन

लोकप्रचलित कथा से यह निश्चित है कि नौरता में एक दानव, राक्षस या भूत की पूजा की जाती है और यह पूजा भय

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

की भावना से प्रेरित है। अनिष्ट करने वाले की शक्ति से पराभूत होकर उसे पूजने के कई उदाहरण ग्रंथों में आये हैं। आदिवासी आदिम संस्कृति के युग में अग्नि, वर्षा, मरुत, नाग आदि की पूजा इसीलिए करते थे। रुद्र और स्कंद ऐसे ही देव थे जो भयंकर ग्रहों के कारण पूजित हुए। इसी प्रकार हारीति, षष्ठी, जरा आदि लोकदेवियों की तरह पूजी गयीं। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि हारीति राजगृह की बालघातिनी कोई क्रूर देवी थी, जो वहाँ के बच्चों को पकड़कर उनका भक्षण कर लिया करती थी। बाद में भगवान् बुद्ध के उपदेश से वह बच्चों की अधिष्ठात्रि देवी बन गयी। भयंकर मातृदेवी के रूप में हर अंचल ने एक लोकदेवी पायी और सबका अन्तर्भाव षष्ठी में हो गया। षष्ठी की पूजा बच्चे की छठी को अवश्य होती है। इसी प्रकार घोर ग्रहों का अंतर्भाव स्कंद में हुआ है। ये ग्रह मांस और मधु के लोभी थे और प्रजा का भक्षण करते थे, इसीलिए स्कंद या कार्तिकेय की पूजा शुरू हुई। डॉ. अग्रवालने स्पष्ट किया है कि ये महाग्रह १६ वर्ष की आयु तक बच्चों के लिए भयंकर रहते हैं। जितने मातृग्रह और पुरुषग्रह हैं, सबको स्कंद ग्रह ही समझना चाहिए (ये च मातृगणाः प्रोक्ताः पुरुषाश्चैव ये ग्रहाः, सर्वे स्कंदग्रहा नाम ज्ञेया नित्यं शरीरिभिः-आरण्यक, २१९/४२)। अतएव सकंद या कार्तिकेय खोटे या घोर ग्रहों के प्रतीक रूप में लोकपूजित हुए थे और नौरता में बनाया गया तथा पूजा गया भूत, राक्षस या दानव दैत्य यही स्कंद हैं। लोक में उनकी पहचान लुप्त हो गयी,इ सलिए वे राक्षस या भूत रूप में रह गये और इसीलिए उनके वध, मरग आदि की कथाएँ प्रचलित हो गयीं।

भिण्ड में प्रचलित प्रेमकथा में सुअटा

श्रीमती रमा श्रीवास्तव ने भिण्ड में प्रचलित कथा सुनाई थी, जिसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है। बहुत समय पहले किसी राज्य का राजा भीमसेन निस्संतान था। बड़ी साधना-आराधना के बाद उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम टेसू रखा गया। राजा उसे राजकाज की सीख देने का प्रयत्न करता था, जबकि उसकी रुचि कविता में थी। जब भी समय मिलता, वह दूर निकल जाता और कविता-गीत सस्वर गाया करता। पास ही, नदी के किनारे एक कुम्हार लड़की झुँझनू ढोर (पशु) चराने आती थी। एक दिन राजकुमार गा रहा था कि उसने वही अपने मधुर स्वर में दुहरा दिया। उसका स्वर राजकुमार कोइ तना भाया कि वह उससे रोज आने और उसकी रचना गाने का आग्रह करने लगा। वह भी रोज निर्धारित समय पर प्रतीक्षा करती। इस तरह दोनों में प्रेम हो गया।

राजा को चिंता हुई कि राजकुमार इतनी देर तक कहाँ रहता है। उसने अपने मंत्री सुअटा को भेजा। सुअटा द्वारा पूरा पता पाकर राजा ने राजकुमार और झुँझनू के पिता से बातें कीं। राजकुमार और झुँझनू एक-दूसरे से ही विवाह के लिए प्रतिबद्ध थे। जब वे नहीं माने, तब उन्हें कारागार में बंद कर दिया गया। एक रात वे वहाँ से भागकर जंगल पहुँच गये और झोपड़ी बनाकर बस गये। शुभ मिती में जब वे शादी कर रहे थे, तब सुअटा पता लगाकर वहाँ पहुँच गया। उसने बाधा डाली, जिसके कारण एक युद्ध-सा मच गया। अंत में वे दोनों तो मार डाले ही गये, सुअटा भी जीवित न बच सका।

इस कथा में सुअटा दो प्रेमियों के विवाह में बाधक तत्त्व है, इसलिए उसका मारा जाना लोकमान्यता प्राप्त कर लेता है। लेकिन नौरता में सुअटा की पूजा के आधार की बुनावट इस कथा में नहीं है। इस कारण उसका प्रसार इतना अधिक नहीं हो सका। इस कथा में झुँझनू को निम्न जाति का कहकर अंतर्जातीय प्रेमसूत्रों को मजबूत किया गया है। एक क्षेत्र में इस खेल को निम्न जातियों द्वारा खेला जाने वाला बताया गया है (पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़ से लिया गया सात्क्षात्कार)।

सकंद के घोर गणों की आकृति भूत-प्रेतादि की भाँति बतायी गयी है। यही कारण है कि नौरता में उसे भूत-प्रेत की तरह दैत्याकार, भयंकर और उलेटे पाँव वाला अंकित किया गया है। 'नारे सुअटा' की पुनरावृत्ति हर गीत में होती है

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

और वह संबोधन जैसी बनकर हर पंक्ति में फिट हो जाती है। लोक प्रचलित है कि सुअटा राक्षस का नाम था, अतएव 'नारे सुअटा' उसी के लिए प्रिय संबोधन है। नारे तो न्यारे (अद्भुत) का विकृत रूप है और सुअटा सुवटू (ब्रह्मचारी) का। ये दोनों विशेषण स्कंद के लिए हैं। स्कंद को अद्भुत का पुत्र कहा गया है, और प्राचीन ग्रंथों में अद्भुत यक्ष के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस तरह स्कंद जो पहले पिशाच कोटि में थे, यक्ष कोटि में उन्नति पर पहुँचे। इस रूप में स्कंद को 'न्यारे' कहना उचित है और फिर प्रसन्न करने के लिए न्यारे या सबसे न्यारे कहना बहुत प्रचलित है। स्कंद का दूसरा नाम 'कुमार' अधिक प्रचलित है क्योंकि वे कुमार ग्रहो के स्वामी हैं। 'कुमार' शब्द ब्रह्मचर्य का प्रतीक है,इ सलिए उन्हें सुवटु-सुवटुआ-सुवटुआ-सुअटा कहना सर्वथा उचित है। वैसे सुअटा का अर्थ सुआ या तोता होता है, जो संदेश पहुँचाने का प्रतीक है। वह अधिकतर श्रृंगार-गीतों में प्रयुक्त हुआ है और छत्तीसगढ़ में तो 'सुआ गीत' सुआ के अभिप्राय को लेकर ही लोकप्रचलित हुए हैं। पर इस प्रसंग में सुआ का अभिप्राय उचित नहीं लगता।

काँय डालने का अर्थ

काँय काँवर का विकृत रूप है। पाइअसद्दमहण्णवो में काय को देशज बताया गया है और उसका अर्थ कावर दिया गया है (संस्करण १९२३, पृ. २९८)। नौरता में प्रथम दिन से काँय डाली जाती है। दतिया का तरफ काली मिट्टी की छोटी-छोटी गोलियों को काँय कहते हैं। कन्याओं की पाँच-पाँच और भाइयों की सात-सात बना ली जाती हैं। फिर कन्याएँ 'सुअटा' को घेरकर खड़ी हो जाती हैं। सयानी कन्या दूब और 'घिया-तुरइया' के फूल को दूध-जल में डुबोकर गौर पर छिड़कती हैं और फिर अपनी सहेलियों पर। सब अपना-अपना नाम लेकर अपनी-अपनी काँय सुअटा पर रखती जाती हैं। इसके साथ गीत भी चलता रहता है। लड़की और भाई का नाम ले-लेकर काँय डाली जाती है।

छतरपुर की तरफ गोलियाँ नहीं बनायी जातीं। गोलियाँ गणना की माध्यम होती हैं। इस ओर उनका प्रयोग न होने का अर्थ है-गणना पर ध्यान न देना। पर इस भूभग में एक विशेष बात दिखाई पड़ती है कि चार दिन तक सुअटा को काँय डाली जाती है और पाँचवें दिन से गौरा-महादेव को। इससे स्पष्ट है की पहले इस खेल में सुअटा की ही पूजा होती थी, बाद में गौर की प्रारम्भ हुई।इ स तरह नवरात्रि का अनुष्ठान बाद में जुड़ा है और उसका नाम 'नौरता' बाद में पड़ा है। पुराना नाम तो सुअटा ही था और केवल उसी का पूजन होता था।

पूजन-अनुष्ठान का उद्देश्य

सुअटा (स्कंद) के पूजन का उद्देश्य उन भयंकर ग्रहों से बचना है, जो १६ वर्ष तक के बच्चों को सताते हैं। वे या तो भक्षण करते हैं या अपहरण। गौरा-पार्वती की पूजा और अनुष्ठान कुमारियों को श्रेष्ठ और मनचाहे वर पाने के लिए है। गौर के साथ महादेव की मूर्ति रख देना लोक के लिए सहज स्वाभाविक है। इस प्रकार जीवन-रक्षा और सौभाग्य ही प्रमुख उद्देश्य सिद्ध होते हैं। चित्र और संगीतकला का कौशल तो दूसरे माध्यमों द्वारा भी अर्जित किया जा सकता है।

पात्रों की प्रतीकात्मकता

पात्रों में प्रमुख है-स्कंद (कुमार) जो घोर ग्रहों के समुच्चय के प्रतीक हैं एवं जिनसे बचने के लिए १६ वर्ष तक की

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

कुमारियाँ उनकी पूजा करती हैं और गौरा-पार्वती, जो वर की प्राप्ति और सुहाग की प्रतीक हैं। सीता ने वांछित वर पाने के लिए गौर-पूजन ही किया था।इ स अंचल की लोककथाओं में गौरा ही सुहाग बाँटती हैं, अतएव ये दोनों प्रतीक स्पष्ट हैं। गौर के साथ महादेव गौर के वरदान को और भी पक्का कर देते हैं। यहाँ वे गौर के सहयोगी के रूप में अंकित हैं, उनका अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है।इ स प्रकार गौर की पूजा से मनचाहे वर की प्राप्ति और स्कंद की पूजा से अनिष्टकारी ग्रहों से रक्षा के प्रतीक स्पष्ट हैं। सूर्य और चंद्र जीवन की निरंतरता के प्रतीक हैं। वे इसी प्रतीकात्मकता के साथ सभी लोकचित्रों और लोकमूर्तियों में अंकित रहते हैं। यहाँ तक कि उनके अंकन से लोकचित्र या लोकशिल्प की पहचान हो जाती है। किन्हीं विद्वानों ने सुअटा के मस्तक पर चन्द्र की अवस्थिति बताकर 'सुअटा' को भूतनाथ (शिव) सिद्ध किया है और पूरी कथा को शिव की प्राप्ति हेतु पार्वती की तपस्या से जोड़ दिया है। वस्तुतः यह भ्रमवश ही हुआ है। या तो दानव 'सुअटा' बनाने वाले ने धोखे से बगल का चंद्र सुअटा के मस्तक पर बैठा दिया है या फिर उन्होंने चन्द्र को 'सुअटा' के मस्तक पर स्वयं टाँक दिया है।

दतिया-निवासी श्री भैयालाल गोस्वामी ने मुझे बताया कि अष्टमी को प्रतिष्ठित की जाने वाली गौर अपनी गोद में एक पुत्र लिये हुए प्रदर्शित की गई है। यह पुत्र वीर स्कंद ही था, जिसने तारकासुर का वध किया था। तारकासुर की जगह और कोई राक्षस भी हो सकता है। पुराणों में स्कंद के जन्म के साथ तारकासुर के वध की कथा जुड़ी है। उसी का संहार करने के लिए स्कंद का जन्म हुआ था। इस दृष्टि से 'सुअटा' तारकासुर है, और गौर के सुपुत्र स्कंद। सुअटा को तारकासुर मानने से 'सुअटा' का वध उसकी मरग आदि की समस्या हल हो जाती है, पर एक प्रश्न उठ खड़ा होता है कि 'सुअटा' की पूजा तारकासुर की पूजा है, और तारकासुर की पूजा का विधान लोक-प्रचलन में नहीं रहा।

'सुअटा' के चबूतरे की नौ सीढ़ियाँ नौदिनी अनुष्ठान की प्रतीक हैं। गौरा देवी के आसन तक वही पहुँच सकता है, जो अनुष्ठान-तप की नौ सीढ़ियाँ चढ़ ले। साधना की मंजिलों को अक्सर ऐसे ही प्रतीकों से प्रदर्शित किया गया है। काँय या काँवरों की गणना भीइ सी का अंग है। पहले किसी तीर्थ के देव पर काँवरें डालने की बोलना-बदना (मनौती) होती थी और किसी स्थान से सुदूर किसी तीर्थ पर काँवर ले जाना बहुत कठिन तपस्या थी। 'सुअटा' की काँवरें या काँय डालना और उनकी गणना इसी तपस्या का संकेत करती हैं।

सूर्य-चंद्र को भाई मानने की लोककल्पना बहुत पुरानी है। जब किसी बहिन के कोई भाई नहीं होता, तो वह सूर्य-चंद्र को भाई मानकर मानसिक संतुष्टि प्राप्त कर लेती है। 'चंदा मामा' के लोकप्रचलन से स्पष्ट है कि चंद्र भाई के संबंध का निर्वाह करता रहा है। लोककथाओं में सूर्य-चंद्र की भागीदारी सबसे अधिक रही है।

'नौरता' में प्रतिदिन बनाये जाने वाले चौकों की प्रतीकात्मकता लोक की समझ के बाहर की वस्तु है। उनके सहज प्रतीकों के अर्थ समझकर ही लोक ने उन्हें अपनाया था। यह निश्चित है कि उनकी तांत्रिक प्रतीकात्मकता लोकमस्तिष्क के पल्ले पड़ना मुश्किल रहै। लोकगीत तो सहज उन्लास के प्रतीक हैं, जो किसी भी साधना में सहायक होते हैं।

लोकगीतों का पाठ

नौरता में प्रयुक्त लोकगीत पारम्परिक ही हैं। उनमें यदि कोई परिवर्तन हुआ है, तो कुछ शब्दों या कुछ पंक्तियों का, जो घुसपैठियों की तरह स्थान पा गये हैं। वैसे रूपांतरण कम ही हुआ है, लेकुन विद्वानों ने उनके अर्थ लगाने में बड़ी चतुराई से काम लिया है। उन्होंने अपना अर्थ सिद्ध करने के लिए काफी कसरत की है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

दतिया-पाठः हिमांचल की कुँअरि लड़ायती, नारे सुअटा,

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

गौरा बाई न्योरा त्योरा नाँयँ।
नाँयँ तौ नइयो बेटी नौ दिनाँ, नारे सुअटा,
दसरए खौं पर न परै।

चिरगाँव-पाठः नाँय हिमांचल जू की कुँवर लड़ायती, नारे सुआटा,
गौरा देवी क्वाँरे में नेहा तोरा नाँयँ।

मऊरानीपुर-पाठः हिमांचल जू की कुँवर लाड़ली, नारे सुआटा,
मेरी गौरा बेटी नेवातौ बनइयो बेटी नौ दिना,
नारे सुआटा, दसारे दिन करौ हो श्रृंगार।

चिरगाँव (ब) पाठः हिमांचल की कुँवर लड़ायतीं, नारे सुअटा,
बघेलिन बेटी निहोरा तिहोरा नाय।
सूरजमल की कुँअरि लड़ायती, नारे सुअटा,
कीरत बेटी निहोरा तिहोरा नाय।...

छतरपुर-पाठः हिमाचल जू की कुँअरि लड़ायतीं, नारे सुअटा,
दूसारे दिन करियो सिंगार।
नेवत अनियो बेटी नौ दिना, नारे सुअटा,
दसारे दिन करियो सिंगार।

गोस्वामी पाठः हिमांचल की कुँअर लड़ायतीं, नारे सुअटा,
गौरा बाई मेरा तोरा नाँय।
नायँ तो नैयो बैटी नौ दिना, नारे सुअटा,
माई दसरये खों परना परे।

दतिया-पाठ महेश कुमार मिश्र द्वारा संकलित है और यह प्रभुदयाल गोस्वामी द्वारा गृहीत पाठ के समान है । अंतर कवेल इतना है कि मिश्र पाठ का न्योरा-त्योरा नेरा-तोरा हो गया है और 'पर न' की जगह पर 'परना' पाठ है। दोनों विद्वानों ने कोई अर्थ नहीं दिया है। चिरगाँव-पाठ में वही शब्ध 'नेहा तोरा' और 'निहोरा तिहोरा' के रूप में हैं। चिरगाँव का प्रथम पाठ गुणसागर सत्यार्थी द्वारा उद्धृत किया गया है, जबकि दूसरा चिरगाँव (ब) महेन्द्र प्रताप सिंह राय के लेख में उपलब्ध है। सत्यार्थी का अर्थइ स प्रकार है-'इधर राजा हिमांचल की लाड़ली राजकुमारी है और उधर तो सुआटा है। हे गौरा देवी ! तुम्हारा क्वँरि से ही इनसे नेहा लग गया।' राय का अर्थ देखें-'राजमाता बघेलिन गढ़ कुंडार की राजसभा को संबोधित करती हुई कहती हैं कि 'मैं वीर हिमांचल की पुत्री हूँ। युद्ध-विधा में निपुण हूँ। मेरे अधीन जो स्त्रियाँ हैं, वे भी युद्ध विद्या में निपुम हैं। हम केवल सुन्दरता और सजावट तथा भोग-विलास का साधन नहीं हैं। हम सभी वीरांगनाएँ हैं। हमारी सामर्थ्य पर आप लोग विश्वास करें।' उन्होंने निहोरा का अर्थ 'देखने की शोभा' और तिहोरा का 'त्योहारों या उत्सवों में' दिया है।

मऊरानीपुर-पाठ मंजु पाण्डेय द्वारा उद्धृत है, जिसमें 'लड़ायती' ने 'लाड़ली' बनकर खड़ापन ला दिया है और दूसरी पंक्तियाँ परिवर्तित हो गयी हैं। इसी प्रकार छतरपुर-पाठ है, जो लगभग वही अर्थ देता है। पहले में 'नेवातौ बनइयो'

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

और दूसरे में 'नेवत अनइयो' है, जिनसे नौ दिन की तैयारी कर अनुष्ठान के लिए न्यौतने या निमंत्रण देने का आशय है। नेवतौ और नेवत निमंत्रण के अर्थ में आए हैं। नेवत अनइयो एक मुहावरा है, जो निमंत्रण देकर सबके साथ कोई व्रत या अनुष्ठान या पवित्र स्नान के लिए प्रयुक्त होता है।

इस प्रकार दो प्रकार के पाठ हैं और दोनों में थोड़ा-सा अंतर है। दतिया-पाठ पुराना है। बहरहाल लोकगीतों का पाठ-निर्धारण और उनका अनुवाद बहुत जरूरी है। यहाँ इस गीत को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है-

हिमांचल की कुँअरि, लड़ाँयती, नारे सुअटा,
गौरा बाई न्योरा त्योरा-१ नायँ।
काँय-२ तौ नइयो बेटी नौ दिनाँ, नारे सुअटा,
दसरये खौं परब-३ परै।
परब परै, मैढ़ा लड़ैं, नारे सुअटा,
लड़ गये बदिया भोर।
बदिया भोर झड़ाझड़ी-४, नारे सुअटा,
समद हिलोरें लेय।-५
सूरज-६ की मइया जौ कहै, नारे सुअटा,
मोरे सूरज काँखाँ जाँयँ।
ओड़ें कारी कामरी, नारे सुअटा,
उन बिन भोर न होय।

अनुवाद-हिमालय की लाड़ली पुत्री गौरा देवी तुम्हारा निहोरा करते हुए नबती (झुकती) है। (यहाँ हिमालय का आशय किसी भी पिता और गौरा बाई का किसी भी कुमारी कन्या से है। सुअटा खेलनेवाली कन्याएँ गौरा की जगह अपना नाम लेती हैं। निहोराउनिवेदन या आराधन)। कन्या नौ दिन तक ही काँय (काँवर) डालेगी (या अर्घ्य देगी), दशहरा तो पर्व का दिन है। उस दिन मैंड़े (नर भेड़) और बदिया (साँड़) लड़ते हैं। प्रातः से वर्षा हुई है और सब जगह समुद्र-सा लहराने लगा है। सूरज की माता कहती है कि उसके सूर्य कहाँ जाएँगे। वे काली कमली (छोटा कम्बल) ओढ़ लेते हैं, (तभी रात होती है) उनके बिना सबेरा नहीं हो सकता।

स्पष्ट है कि यह गीत आज भी उपलब्ध है और गाया जाता है, पर इसका अर्थ खो गया है। गीत में कितनी काव्यात्मकता है, जिसे समझकर कोई भी भावुक मन रसमय हो जाता है। असल में, नौ दिनों की साधना के बाद एक नयी भोर आएगी, एक नया सूरज निकलेगा। वह सूरज, जो अब तक काली कमली ओढ़कर छिप गया था, फिर नये ओज से निकलेगा, नयी ऊजरी भोर देगा।

पाठान्तर-१. नेरा तोरा २. नाँय ३. पर न.परना ३. झड़ाझडे ५. माई हमारे सूरज कहाँ जाँयँ ६. समद।

इतिहास-तत्त्व

चिरगाँव के महेंद्र प्रताप सिंह राय ने एक गीत से दो पंक्तियाँ ऐसी दी हैं, जो प्रचलन में नहीं हैं और न गायी जाती हैं-

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

उठो उठो सूरजमल भैया भोर भये, नारे सुअटा,
मलिनीं खड़ी हैं तेते द्वार।
इन्दरगढ़ की मलिनीं, नारे सुअटा,
हाटई हाट बिकायँ।।...

उक्त पंक्तियों कार अर्थ भी दिया गया ह, जिसमें सूरजमल और चन्द्रामल को गढ़कुण्डार का सेनापति माना गया है और उनसे दुखयारी नारियाँ निवेदन करती हैं कि 'हम सब तुम्हारे दरवाजे खड़ी हैं। इंदरगढ़ की स्त्रियाँ बाजार में बेची जा रही हैं। इसलिए हे भैया, जागो, जागो।'इ ससे प्रकट है कि यह कथानक गढ़कुण्डार के इतिहास से संबंधित है, लेकिन यह प्रामाणिक नहीं है। वस्तुतः यह कथा तो उस समय की है, जब स्कंद का बोलबाला था। ईसापूर्व की दूसरी शती से लेकर छठवीं शती तक मुद्राओं पर कार्तिकेय का अंकन मिलता है, अतएव यह पूजन उसी अवधि में शुरू हुआ था। चंदेल-काल में, खास तौर से १२वीं शती में अपहरण का ज्यादा जोर रहा, तब 'सुअटा' का उत्कर्ष हुआ। इस तरह के संकेत निम्न पंक्तियों में देखें-

चरन चंदेरी जैहें, पियन पिरागै जैहें।
लरन महोबे जैहें, पान खान पातालै जैहें।।
चार आना चंदेली दैहों, बाराना बैरागै जैहों।
पानी पियन महोबे जैहों, दाने खाँ दरवाजे जैहों।।

पहले में घोड़ों के चरने, पीने, लड़ने और पान खाने से शक्ति का प्रभाव उत्पन्न किया गया है। दूसरे में चंदेली और महोबे से उस काल की प्रियता का संकेत है। महोबा लड़ने जाने में ही वहाँ की वीरता का गान है। डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि 'और इन लड़कियों के भाई अपनी जन्मभूमि (महोबा) के उद्धार के लिए लड़ाइयाँ तो लड़ते ही हैं।' स्पष्ट है कि महोबा की कजरियों की लड़ाई के बाद अर्थात् सन् ११८२ ई. के उपरांत ही यह गीत रचा गया है। 'लरन महोबे जैहें' से पता चलता है कि इस गीत के रचना-काल तक यह युद्ध (चंदेल-चौहान-युद्ध) बहुत प्रसिद्ध हो चुका था। साथ ही अपहरण की घटनाएँ भी उस समय इतनी अधिक हो गयी थीं किइ स 'सुअटा कथा' को काव्य में रूपायित करना जरूरी हो गया था।

सांस्कृतिक चेतना

सुअटा की कथा और पात्रों के चित्रण में भारतीय संस्कृति के यथार्थ और आदर्श के ताने-बाने कुछ इस तरह बुने गये हैं कि उनसे लोकजीवन का एक पूरा परिदृश्य उभरकर खड़ा हो जाता है। यौवन की देहरी पर खड़ी एक किशोरी अपने सौन्दर्य और अलंकरण से सजकर जब बाहर झाँकती है, तब कोई-न-कोई मारीच स्वर्णमृग बनकर आ जाता है और फिर कोई रावण हरण का मौका पा लेता है। ऐसे संकट-काल में शक्ति की साधना अनिवार्य हो जाती है। इस प्रकार शिवमूस्वरूपा शक्ति राक्षस या दानव-वध के प्रतीक द्वारा अशिव पर विजय का लोकादर्श प्रतिष्ठित करती है। आदर्श का दूसरा रूप जीवन के रचनात्मक पक्ष से जुड़ा हुआ है। सूरजमल और चन्दामल के घोड़े छूटते हैं, पर वे किसी को हानि नहीं पहुँचाते वे सबका उपकार ही करते हैं-

लीले से घुड़ला कुँदाउत जैहैं,
लाल छड़ी चमकाउत जैहैं,

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

पाँवड़ियाँ चटकाउत जैहैं,
सिर की पगड़ी समारत जैहैं,
उखटे बाग लगाउत जैहैं,
अंध कुँअल उघराउत जैहैं,
फूटे ताल बँधाउत जैहैं,
नंगी डुकरियाँ पहिराउत जैहैं,
बन की चिरैयाँ चुगाउत जैहैं,
बेई मोरे भइया,
चन्दामल भइया, सूरजमल भइया।

बहिन को गर्व है अपने उन भाइयों पर, जो मार्ग में लोकहित करते हुए अपनी पगड़ी को सँभालते ही नहीं,ऊँ ची भी करते हैं। वे उन वीरों की तरह नहीं हैं, जो मार्ग के बागों, खेतों और सरोवरों को नष्ट करते चलते हैं। विदेशी संस्कृतियों से यह भिन्नता हमारी संस्कृति की पहचान रेखांकित करती है। इस तरह शिवम् के दोनों रूप इस अनुष्ठानपरक खेल में निहित हैं।

पारिवारिक संबंधों का यथार्थ

गार्हस्थिक संस्कृति की वास्तविकता नौरता के गीतों का एक प्रमुख विषय है। बहिन की शिकायत है कि गाली देने वाली सास और अटारी पर चढ़ी रहने वाली ननद उसे नहीं चाहिए। उसके कथनों में सत्याग्रही खरापन है-

पनियाँ की खेप न धरहों, गुबरा की हेल न छीहों।
चकिया को डड़ा न छीहों, तबा पै कुचइया न धरहों।
ताती हू तौ लप-लप खैहों, बासी कौ कौर न दैहों।
मइया कौ कहो न करहों, बाबुल कौ कहो न करहों।
भौजी के बोल न सैहों, भइया के बोल न सैहों।

तमाम रूढ़ियों से घिरी नारी जब प्रतिक्रिया पर खड़ी हो जाती है, तब वह किसी भी अन्याय को सहने के लिए तैयार नहीं होती। माँ-बाप-किसी का कहना नहीं मानती। लेकिन माँ-बाप के पिरति उसके हृदय में प्रेम का अपार सागर लहराता रहता है-

ढिग ढिग लिखियो मोरो मायको, नारे सुअटा,
अंचरन्न माई के बोल।
माई बैठी मँझधरा, नारे सुअटा, बाबुल पौंर दुआर।।

पारिवारिक आदर्श का एक रूप पिता और ससुर, दोनों की पगड़ी के सम्मान में है-'बाबुल बड़े मोरे बिछिया, ससुर बड़े मोरी बाँक।' दोनों नारी के अलंकरण हैं, घर के श्रृंगार हैं और परिवार के सौभाग्य।

लोक में भौजी-ननद के संबंधों के बारे में एक विशेष धारणा बन गयी है, जिसे एकदम तोड़ देती हैं नौरता की

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

गीत-पंक्तियाँ-

तुम जिन जानो भौजी माँगने, नारे सुअटा, घर-घर देत असीस।
जित्ते अच्छत भौजी भौं परे, नारे सुअटा, उत्ते दुलैया तोरे पूत।
दूदन-पूतन भौजी घर भरै, नारे सुअटा, बहुअन भरै चटसार।
लरका खाबें घियापुरीं, नारे सुअटा, बउएँ कच्चुलन दूद।

भारतीय नारीत्व का रेखांकन

नौरता भारतीय नारीत्व का एलबम है। उसमें नारी की दिनचर्या से लेकर उसकी मानसिकता तक के विभिन्न चित्र अंकित हुए हैं। एक तरफ घरेलू नारी की व्यथा-कथा है, तो दूसरी तरफ त्याग और अनुराग से रँगी सामाजिक नारी की। वह लीपना-पोतना, गोबर करना, चकिया पीसना और रोटी बनाने जैसे कार्य करती हुई भी अपने सामाजिक दायित्वों को नहीं भूलती। वह अपने शारीरिक सौन्दर्य और श्रृंगार के प्रति हमेशा सचेत रहती है। नौरता में आभूषणों की रुचि का एक अनोखा उदाहरण मिलता है। लेकिनइ सके साथ-साथ वह केवल अपने सौन्दर्य-श्रृंगार की चाहना नहीं करती, वरन् सबके लिए वही सौन्दर्य की याचना करती है-

गौरा तोरो सिंगार, मैया मोये दै दियो।
गौरा तोरो सिंगार, सबरीं बिटियन खों दियो।

नारी के सौन्दर्य का चित्रण 'झाँई देखने-दिखाने' वाले गीतों में कुछ नये उपमानों से तो हुआ है, पर बाद में आभूषणों की गिनती गिन दी गई है। आभूषणों का अलंकरण नारी की ऐसी ललक है, जो कभी तृप्त नहीं होती। साथ में सहज-स्वाभाविक सौंदर्य के प्रति उसकी रुझान चर्चित रही है-

मूँगा मँसेली,
चनन कैसी घेंटी,
सजन कैसी बेंटी,
दूर दिसंतर दई है गौरा बेटी।

मूँगा जैसे सिंदूरी रंग के मांस वाली, चना की घेंटी की तरह मुलायम हरी-भरी और फलदार तथा पति का महारा देने वाली छड़ी की तरह दृढ़ गौरा (कोई भी नाम) बेटी बहुत दूर ब्याही गई है। इस तरह के चित्रण से जो ग्राम्य सौंदर्य का चित्र उभरता है, वह अद्‌भुत है। लेकिन एक विद्वान् ने 'मूँगा मँसेला' से शंकर जी का भयानक रूप दिखाकर शेष दोनों पंक्तियों में गौरा की भयभीत मनोस्थिति से जन्में सौंदर्य के चित्रण की कल्पना की है, जो उचित नहीं है।

दूसरे की गौर को नकटी-बूची बताना और अपनी को सुंदर कहकर गर्वित होना, सास की गालियाँ और भोजी के कठोर बोल न सहने की हिम्मत दिखाना, अपने भाइयों की प्रशंसा करना और टोना-टोटका पर विश्वास आदि हर नारी की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं, जो 'सुअटा' के गीतों में यत्र-तत्र बिखरी हुई हैं। विवाह, विदा, अपहरण आदि नारी की प्रमुख समस्याएँ हैं, जिनसे हर नारी को जूझना पड़ता है। इस जूझ में वह गौरी या दुर्गा बनकर मजबूती से खड़ी रहती है और दूसरी तरफ भाग्य के सहारे अपना जीवन जीती रहती है-

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

कुँअला होइ तो पाटिये उर करम न पाटे जायँ।
कगदा होइ तो बाँचिये उर करम न बाँचे जायँ।।

इन पंक्तियों में नारी का सीधा-सहज दर्शन व्यक्त हुआ है। समस्या के समाधान की खोज वह बड़ी चतुराई से करती है। मौका पड़ने पर खोटे ग्रहों को पूजती है और समय आने पर उनका संहार भी करती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'सुअटा' में भारतीय नारी का पूरा मनोविज्ञान अवतरित हुआ है।

सामाजिक चेतना का विद्रोही रूप

नारी-संदर्भ में समाज की एक प्रमुख समस्या विवाह रही है। बहुत पहले से ही नारी के वधू-रूप पर अनेक अत्याचार हुए हैं और आज भी हो रहे हैं। सास किसी-न-किसी बहाने बहू को सूली पर टाँग देती है-

सासरे की गैल में इक राजा भइया जात ते।
ठाँड़े रइयो राजा भइया एक संदेसौ कात ते।
ऊँट के गोबरा सें बे आँगना लिपाउतीं।
का करें राजा भइया चीकनो ना होत तो।

ऐसी स्थिति में नारी की सहनशीलता का बाँध एकदम टूट पड़ता है और वह विवाह कराने वाले ब्राह्मण और नाई के विनाश को आमंत्रण करती हुई एक विद्रोही भूमिका अदा करने लगती है-

कीनें लिखे जे घर अँगना कीनें लिखे परदेस।
बमना लिखे जे घर और अँगना नउआ लिखे परदेस।
बरै बौ बमना उर बरै बौ नउआ जीनें लिखे परदेस।
दूरा जुनरिया जिन बइयो उर बिटिया न दइयो परदेस।

बहुत दूर ज्वार का बोना जिस प्रकार वर्जित है, उसी प्रकार दूर के परदेस में बिटिया का विवाह करना। वे ब्राह्मण और नाई जल कर नष्ट ही जायँ जो किसी बिटिया के भाग्य में परेदश लिखने के जिम्मेदार हैं।

मामुलिया और टेसू से संबंध

बुंदेलखंड जनपद बहुत बड़ा है, अतएव उसके लोकोत्सवों के स्वरूप में विविधताएँ हैं। दतिया की तरफ ढिरिया माँगना चतुर्दशी तक चलता है और पूर्णिमा को अंत्येष्टि-भोज होता है। पड़ा सुअटा की गर्दन काट देता है। उरई-जालौन तरफ नवमी से चौदस तक टेसू खेला जाता है और पूर्णिमा को टेसू तथा ढिरिया या झिंझिया का विवाह होता है। एक लोककथा के अनुसार झिंझिया या ढिरिया सुअटा की पुत्री थी, जिसे देखकर टेसू नामक वीर आकर्षित हुआ था। वह सुअटा को हरा कर झिंझिया से विवाह कर लेता है। उसी अवसर पर सुअटा के अंग भंग कर उसे लूटा जाता है। इसी

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

तरह मामुलिया और सुअटा को बहिन-भाई मानकर कथा की

एकसूत्रता सिद्ध की जाती है। लिककथाकार कथा का विस्तार करने में बहुत कुशल होता है। वह पात्रों के संबंधों की स्थापना से कथा को अन्वित कर देता है। काल-संकलन भी उसमें सहायक हुआ है। पहले मामुलिया, फिर सुअटा और उसके बाद टेसू। दूसरे, मामुलिया और सुअटा क्वाँरी लड़कियाँ ही खेलती हैं, इस कारण भी जुड़ाव हुआ है।

लोकचित्र और लोकमूर्तिः कलाओं का संगम

सुअटा की तैयारी वस्तुतः लोककला की तैयारी है। कन्याएँ सबसे पहले खसकीला, दुद्दी, चीलबटा आदि पत्थरों को बाँटना और कपड़े से छानकर महीन अंश निकालना शुरू करती हैं। अब तो पिसे चावल और महीन बुरादे से रंग तैयार क्ये जाते हैं। रंगों को डबुलियों या डिब्बों में भरकर सुरक्षित रखा जाता है और उनसे प्रतिदिन रंगों की छीप भर ली जाती है।

मुहल्ले में एक अच्छा समतल चबूतरा खोजकर उसे लीप-पोतकर तैयार किया जाता है। घर की दीवार से सटाकर एक छोटा चबूतरा बनाया जाता है, जिसमें नौ सीढ़ियाँ होती हैं और सबसे ऊपर एक छोटी चबूतरी-सी। दीवाल पर सूर्य-चन्द्र और सुअटा बनाये जाते हैं। काली मिट्टी में कागज और गौबर-चूर्ण मिलाकर मूर्तियाँ बनती हैं। दीवालों पर मूर्तियाँ बनाने की कला बहुत पुरानी है, जो पारंपरिक रूप में अभी तक वर्तमान है। यह बात अलग है कि लोकमूर्तियों में कला की बारीकी पर ध्यान न होकर उनकी अर्थमयी प्रतीकात्मकता पर अधिक रहता है। वे स्थूल और भदेस भली हों, पर कथा के अभिप्रायों के अनुरूप होती हैं. अंचल के कुछ भागों में गौरा-महादेव रोज बनते हैं और कुछ में पंचमी से तथा कुछ में अष्टमी को। कहीं-कहीं केवल गौरा की मूर्ति ही बनती है। अष्टमी को प्रतिष्ठित गौर महागौर होती है, जो सुअटा रूपी दानव का वध करती है। जालौन जिले की श्रीमती राम देवी ने एक साक्षात्कार में बताया कि उनके यहाँ मिट्टी की गोलियों से गौरा की मूर्ति बना ली जाती है। पहले तीन गोलियाँ जोड़ लीं, फिर उनके ऊपर दो और अंत में सबसे ऊपर एक गोली में नाक, कान आदि। यह लोकमूर्ति की रचना का सबसे पुराना ढंग है। गौरा के सौन्दर्य का वर्णन लोकगीतों में आया है और उसके अंलकरण को बार-बार दुहराया गया है। अतएव गौरा की मूर्ति बहुत कौशल की भी अपेक्षा करती है और प्रतियोगिता में जीतने की इच्छा से रंजित होती है। इस कारण वह किसी कुशल कन्या द्वारा बनाई जाती है या बनी हुई खरीदी जाती है। इसमें कोई शक नहीं है कि सुअटा मूर्तिकला की सीख देने का मनोरंजक माध्यम है। इसीलिए कहीं-कहीं कन्याओं का अपने हाथ से मूर्तियाँ बनाना अनिवार्य कर दिया गया है।

नौरता में चित्रांकन के कई रूप आये हैं। चबूतरे की भूमि पर धूलि-चित्र, दीवाल के भित्ति-चित्र तथा चुनरी के पट-चित्र। चबूतरे के चित्रों को 'चौक पूरना' कहते हैं, क्योंकि अधिकतर चौक ही बनाये जाते हैं। चबूतरे को ढिक देकर गोबर से लीप दिया जाता है। सूखने पर ही चारों किनारों में कँगूरे अंकित किये जाते हैं, फिर बीच में चौक और अन्य आकृतियाँ बनती हैं। कहीं-कहीं प्रथम दिन एक ही चौक बनता है, तो कहीं-कहीं नवें दिन। बिजावर की कु. कल्पना ने बताया कि उनके यहाँ गोरा के नाम का एक चौक और फिर चन्दा-सूरज के लिए एक बनता है। दोनों रूपों में एक बड़ा चौक सामूहिक आलेखन का परिणाम होता है और सह-आलेखन का प्रमाण उपस्थित करता है। शेष दिनों कन्याएँ अपने अलग-अलग चौक बनाकर नाना प्रकार के रूपांकों की झाँकी लगा देती हैं। पहले सफेद रंग द्वारा रेखांकन किया जाता है, बाद में सूखे रंगों की जमावट होती है। चौकों में जहाँ ज्यामितिक आकृतियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का दावा किया जाता है, वहाँ विभिन्न रंगों के भी संकेतात्मक अर्थ लगाये जाते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि तंत्रविद्या से ही प्रतीकांकन गृहीत किये गये हैं। इतना तो निश्चित है कि लोकचित्रों की ज्यामितिक आकृतियाँ अपने अर्थ रखती हैं, पर उनमें लोकप्रतीकों की अर्थवत्ता ही लेना उचित है। इन चौकों के अतिरिक्त अब बेलिया और फूल चौक ज्यादा बनने लगे हैं।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

कभी-कभी अंलकरण के लिए फूल-पत्ती के रूपांक प्रयुक्त होते हैं। साँतिये (स्वस्तिक) भी लिखे जाते हैं।

दीवाल पर सूर्य-चन्द्र और सुअटा की मूर्तियाँ अब कम हो गयी हैं। उनकी जगह पर उनके चित्र लिखे जाने लगे हैं।इ न भित्ति-चित्रों के लिए गीले रंगों का प्रयोग होता है, जो खड़िया, गेरू, नील, रज आदि से बनाये जाते हैं। सुअटा की प्रतिमा का कौंड़ियों, काँच की गोलियों और चमकीली पन्नी से तथा गौर को देवल (चने की दाल), ज्वार, चावल और फूल की पंखुरियों से जो श्रृंगार होता था, वह भित्ति चित्रों में विरल है। पट-चित्रों का चित्रण एक लोकगीत की कुछ पंक्तियों में आया है, जिससे स्पष्ट है कि चुनरी में हर भाँति के ठप्पे लगाये जाते थे-

ऊँची कगर की पीयरी, नारे सुअटा, महोबे लगे हैं बजार।
बिरजी है गौरा बेटी, नारे सुअटा, बाबुल मोरी चुनरी रँगाव।
ढिग-ढिग लिखियो मोरो मायको, अँचरन माई के बोल।
मझधरा लिखियो मोरे बीरन, नारे सुअटा, बाबुल पौंर दुआर।

ढिरिया (घट) में या तो कोई ज्यामितिक रूपांक (डिजाइन) या बेलबूटेदार चित्रांकन किया जाता है, जिसे हम कलश-चित्र कह सकते हैं। ढिरिया में कई छेद रहते हैं, जिनसे दीपक की प्रकाश-किरणें निकलती रहती हैं, इसलिए रेखांकन से ही सजाने की गुंजाइश रहती है।

लोकसंगीत और लोकनृत्य

सुअटा के गीत संधिकाल के गीत हैं। जब चंदेल शासकों की शक्ति क्षीण पड़ने लगी और विदेशी आक्रमणों का जोर भीतरी भागों तक पहुँचने लगा, तब अपहरण (नारी-अपहरण) के विरुद्ध एक प्रभावी प्रतिक्रिया शुरू हुई। लोक ने समाधान के रूप में गौरी-पूजन अपनाया, फलस्वरूप स्कंद और गौरी की पूजा साथ-साथ होने लगी। स्कंद को पिशाच या घोर ग्रह माना जाता था, अतएव उसे राक्षस या दानव कहकर गौरी (दुर्गा रूप) द्वारा वध करवाना अपहरण की समस्या का उपचार बन गया। यह निश्चित है कि उस समय तक वीररसपरक गाथाओं की ललकार मंद पड़ चुकी थी, इसलिए सुअटा के गीतों में मध्य सप्तक का प्रयोग किया गया था। सभी गीत सामूहिक गीत हैं और घर के चबूतरे या अथाई पर अथवा गली में गाये जाते हैं। इस वजह से मन्द्र स्वरों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। गीतों में अन्तरा का प्रवेश नहीं है, इसलिए वे पुरानी लोकगायकी का एक नमूना प्रस्तुत करते हैं। सभी गीत कहरवा और दादरा, दोनों तालों में गाये जाते हैं, किन्तु कुछ मध्य लय में और कुछ द्रुत में। किसी में पाँच स्वर रहते हैं, किसी में सात। इतना तो सही है कि लोकगीतों की कसौटी के रूप में शस्त्रीय पैमाने ओछे ही साबित होते हैं।

बिजावर, मऊरानीपुर, दतिया, भिण्ड, जालौन जिलों की नौरता गायकी सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि पारम्परिक धुनों का अनुसरण बहुत कम हो रहा है। व्यक्तिपरकता काफी बढ़ गयी है। 'नारे सुअटा' के संबोधन से गाये जाने वाले गीतों में परम्परित लयकारिता रहती है, भले ही कहीं अधिक हो और कहीं कम, लेकिन अन्य गीतों में गायिकाएँ स्वच्छंदता से काम लेती हैं। फिर भी लयकारिता में दतिया आगे है। यह बात अलग है कि कभी-कभी वह लयकारिता या तो शास्त्रीयता को छू लेती है या फिर व्यक्तिपरक स्वर-संधान का शिकार हो जाती है।

ढिरिया को सिर पर रखकर एक कन्या बीच में रहती है और शेष कन्याएँ उसके चारों ओर। घर के द्वार पर कन्याएँ समूह गीत गाती हैं और ढिरिया के चारों ओर घेरा बनाकर नृत्य करती हैं। इस नृत्य में पद और हस्त-संचालन की अपेक्षा मुख की अभिव्यक्ति ही असरदार होती है। वर्तमान काल में यह नृत्य बहुत दुर्लभ हो गया है। इतना अवश्य है

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

कि इसमें आदिवासी लोकनृत्य की प्रतीच्छाया ही थी, जो आखेट काल में अग्नि के चारों तरफ किया जाता था।

महत्त्व

लोकजीवन और लोकसंस्कृति में नौरता का महत्त्व नारीत्व की सीख में है। नौरता के द्वारा नारी भविष्य के नारीत्व की दीक्षा पाती है। लीपना, पोतना, ढिग देना, रेखांकन, चित्रण, मूर्ति बनाना, गीत गाना, नृत्य करना, गौरी की पूजा और साधना, एक साथ काम करने की भावना, एकता, सास के अत्याचार, भाई-बहीन का प्रेम, पिता का वात्सल्य और माता की ममता, अपहरण का विरोध, ब्राह्मण और नाई के खिलाफ तीव्र प्रतिक्रिया, और इन सबको अनुष्ठान के संकल्प से बाँधना नारीजीवन के लिए बहुत उपयोगी है। विशेषता तो यह है कि सब कुछ खेल के रूप में घटित होता है। नौरता नारी की पूजा का प्रतीक है। 'अमरकोष' में कुमारिका को 'गौरी' कहा गया है और गौरी पार्वती के कौमार्य का नाम था। आज भी समूचा बुंदेलखंड 'क्वाँरी कन्या' को पूजता है। इस प्रकार नारी के प्रति पूज्य भावना का पूरा प्रतिनिधित्व हो जाता है। वस्तुतः नौरता एक खेल है, लोककलाओं का संगम है, रिश्तों की सीख है, नारी के प्रति अन्याय का विरोध है, शक्ति की साधना है, और इन सबके लिए किया गया एक अनुष्ठान है।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.